(पाश की कविता)

इनकार

मुझसे उम्मीद न करना कि मैं खेतों का बेटा होकर
आपके चगले हुए स्वादों की बात करूंगा
जिनकी बाढ़ में बह जाती है
हमारे बच्चों की तोतली कविता
और हमारी बेटियों की कंजकों–सी हंसी

मैं तो जब भी करूंगा–खाद की कमी
किसी गरीब के सीने की तरह पिचक गए
ईख की ही बात करूंगा
मैं दालान के कोने में पड़ी रबी की फ़सल
और दालान के दर पर खड़े जाड़े की ही बात करूंगा
मुझसे उम्मीद न करना कि मैं सर्द ऋतु में खिलनेवाले
फूलों की किस्मों के नाम पर
गांव की लड़कियों के उल्टे–सीधे नाम रखूंगा

मैं बैंक के सेक्रेटरी की शरारती मूंछों
सरपंच की थाने तक फैली लंबी पूंछ
और मैंने जो अपने सीने पर पाल रखा है
उस पूरे चिड़ियाघर की
या उस अजायबघर की
जो मैंने अपने सीने में संभाल रखा है
या इस तरह की ही कोई चुभनेवाली बात करूंगा
मेरे लिए दिल तो बस एक पान के पत्ते–सा लोथड़ा है
मेरे लिए हुस्न मकई की नमक लगी रोटी–सी लज्जत है
मेरे लिए जिंदगी घर की शराब की तरह
छिप–छिपकर पीने की कोई चीज़ है
मुझसे उम्मीद न करना कि मैं खरगोश की तरह
वक्षों की कोमल सुगंध को धीमे से सूंघता रहूं
मैं जुते हुए बैलों की तरह हर चीज़ का
खुरली पर सीधा होकर होकर सामना करता हूं

मैं किसानों के साधु बनने से पहले का सफ़र हूं
मैं बुड्ढे मोची की गुम हुई आखों की रोशनी हूं
मैं लूले हौलदार के दाएं हाथ की स्मृति हूं बस
मैं वक्त की देह पर चौथाई सदी का दाग हूं बस
और मेरी कल्पना उस लुहार के जगह–जगह झुलसे मांस–जेसी है
हवा के एक झोंके के लिए
जो बेरहम आसमान पर खीझा रहे
जिसके हाथ में पकड़ा हल का फाल
कभी तलवार बन जाए कभी चारे की गठड़ी रह जाए बस
मैं आपके लिए अब किसी हार्मोनियम का पंखा नहीं हो सकता
मैं बर्तन मांजती झींवरी की उंगलियों से रिसता राग हूं बस

मेरे पास सौंदर्य की इस सपन–सीमा से इधर
अभी बहुत बातें करने को है
अभी मैं धरती पर छाई
किसी दिहाड़ीदार के काले स्याह होंठों सी रात की ही बात करूंगा
उस इतिहास की
जो मेरे बाप के धूप से झूलसे कंधों पर उकरा है
या अपनी मां की पांव–फटी
बिवाइयों के भूगोल की ही बात करूंगा

मुझसे उम्मीद न करना कि मैं खेतों का बेटा होकर
आपके चगले हुए स्वादों की कोई बात करूंगा
जिनकी बाढ़ में बह जाती है हमारे बच्चों की तोतली कविता
और हमारी बेटियों की कंजकों–सी हंसी।

पेज 1 का शेष

हर मर्द है संभावित यौन अपराधी

हर परिवार में हर लड़के को वर्चस्व का पाठ पढाते हुए बड़ा किया जाता है। समाज में मर्द के वर्चस्व को जगह–जगह पर हवा दी जाती है। यही वर्चस्व तरह–तरह से व्यक्त होता है। यौन–हिंसा तो मात्र एक रूप है। अन्य प्रमुख रूपों में घरेलू हिंसा, दहेज हिंसा, भ्रूण हत्या, 'इज्जत' हत्या, काम–काज स्थल पर उत्पीड़न, संपत्ति से वंचना, स्व–निर्णय पर रोक इत्यादि शामिल हैं। ये हिंसायें रोज़ लाखों–करोड़ों स्त्रियों के जीवन में हो रही हैं। मोदियों, ए.के. गांगुलियों, तेजपालों धनंजयों, आसारामों के जब–तब सामने आने वाले प्रकरण हमें यही जताते हैं कि परिवार एवं समाज से पुरुष वर्चस्व को खत्म किये बिना स्त्री को हिंसा से निजात नहीं मिलने जा रही।

ये प्रकरण हमें यह भी याद दिलाते हैं कि मौजूदा व्यवस्था में रसूखवाले यौन अपराधियों को सज़ा दिला पाना कितना असंभव कार्य है। सही मायने में स्त्री का सशक्तीकरण ही इस दिशा में एकमात्र उपाय है।

सांप्रदायिक दंगों के उत्पीड़ितों की राहत का बिल कहाँ रह गया

पर हमें समझना होगा कि इस सफल लालू माडल की मुख्य चालक शक्ति प्रशासनिक जवाबदेही नहीं बल्कि चुनावी समीकरण की अनिवार्यता थी। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि लालू शासन की इस मोर्चे पर उपलब्धि सामान्य कानूनों की बदौलत ही संभव की गयी थी; उन्हें किसी विशेष कानून की दरकार नहीं पड़ी। दरअसल 'कानून का शासन' एक प्रशासकीय अवधारणा है। आम आदमी के मतलब की अवधारणा है, 'कानून की भूमिका'। इस सबका निचोड़ यह कि उत्पीड़ित के लिए क़ानून तभी प्रभावी होता है जब राजनीति और प्रशासन का वांछित सम्मिलन हो। प्रशासनिक 'जवाबदेही माडल' में भी यह हमेशा सम्भव नहीं।

इस आयाम को समझने के लिए लालू के बाद के बिहार, और मोदी के 2002 के दंगोंवाले और दंगों के बाद के गुजरात पर नजर डालनी होगी। लालू के बाद बिहार में भाजपा ने नितीश कुमार के साथ मिलकर शासन चलाया और वहां, जब तक यह गठबंधन चला, साम्प्रदायिक शांति रही, क्योंकि इस राजनीतिक गठजोड़ के चलते रहने की यही मांग थी। अब जैसे ही यह गठबंधन टूटा है वहां सांप्रदायिक तनाव सतह पर नजर आने लगा है। इसी तरह जिस गुजरात में 2002 के सांप्रदायिक दंगों में प्रशासन निष्क्रिय रहा, वहीं उसके बाद सांप्रदायिक शांति चल रही है। दोनों ही स्थितियों में सामान्य कानून ही अपना काम कर रहे हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि 2002 में जो शासन–प्रशासन गठजोड़ दंगों के होने में अपना फायदा देख रहा था, वही उसके बाद दंगों में अपना नुक्सान पा रहा था। तो क्या सांप्रदायिक दंगों को रोकने और पीड़ितों की क्षतिपूर्ति को लेकर प्रस्तावित बिल का कोई अर्थ है। हाँ, है। पर तभी जब इसकी कमियों को दूर किया जाय। इस बिल में भी प्रमुख बुनियादी गलती की गयी है कि राज्य के प्राधिकार को बढ़ाया गया है, न कि उत्पीड़ित के अधिकार को। लिहाजा 'क़ानून की भूमिका' शासन चलानेवालों के स्वार्थों से संचालित उनके रहमोकरम पर ही रहेगी न कि उत्पीड़ितों के मतलब की। दूसरी बड़ी गलती है सम्भावित उत्पीड़ित तबकों को एक असंवेदी प्रशासनिक मशीनरी के हाथों में छोड़ने की। बाद में उनमें से कुछ को सजायें देने से पीड़ितों का क्या भला होगा? तीसरी बड़ी कमी है बिल की उलझाऊ कानूनी भाषा जो वकीलों द्वारों ड्राफ्ट किये किसी भी बिल में होना स्वाभाविक है पर पीड़ित का बजाय सशक्तिकरण करने के उसे घातक परनिर्भरता की ओर धकेल देती है।

लिहाजा निम्न सुझाव प्रस्तावित हैं –

1. उत्पीड़ित के अधिकारों को नए सिरे से रेखांकित किया जाय। इसके लिये सूचना के अधिकार 2005 एवं वनाधिकार विधेयक 2008 को देखा जा सकता है जिनमे व्यक्ति के अधिकार और राज्य के प्राधिकार के बीच बेहतर समन्वय है।

2. प्रशासन के साथ–साथ शासन की जवाबदेही भी शामिल की जाय7 मसलन, साम्प्रदायिक शान्ति बनाए रखने में असफल शासन को संविधान की धारा 356 के अंतर्गत लाया जाय।

3. केवल संवेदी सर्टीफाइड(constitutionally conditioned) पुलिस–प्रशासनिक–न्यायिक कर्मियों को इन प्रकरणों में कार्यवाही करने की भूमिका दी जाय।

4. केवल अदालतों में चलनेवाली आपराधिक दंड प्रक्रियाओं को छोड़कर शेष अन्य तमाम आयामों जैसे पुनर्स्थापन, क्षतिपूर्ति, इत्यादि में वकीलों का प्रवेश वर्जित हो।

5. प्रतावित बिल को सरल भाषा में पुन: ड्राफ्ट किया जाय।

6. हर राहत समयबद्ध पीड़ित के पास चल कर आये, पीड़ित को कहीं न जाना पड़े। इस आयाम पर प्रशासनिक जवाबदेही चरम पर होनी चाहिए। एकमात्र सजा सम्बंधित की बर्खास्तगी हो।

'जाप' में ही न उलझी रहे 'आप'

करप्शन की व्यवस्था से लड़ने में एक प्रति–व्यवस्था के न बना पाने का खामियाज़ा दोनों बार इस देश की जनता को भुगतना पड़ा। करप्शन और सीना तान कर आगे बढता चला गया है। डर है कि केजरीवाल का प्रयोग भी उन्ही कटु अनुभवों को न दोहरा दे। अभी वक्त है कि दीवार पर लिखी इबारत में छिपी चेतावनी को पढा जाय और जरूरी उपाय किये जाएं।

चापलूसी का एक नमूना

भूपेंद्र हुड्डा के मुख्यमंत्री बनने से पूर्व जिस रणवीर सिंह हुड्डा को कोई जानता तक नहीं था, उसके बुतों पर चापलूसों की भीड़ तब तक तो रहेगी ही जब तक भूपेन्द्र मुख्यमंत्री हैं।